ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 45-48
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

ग्रामीण विकास एवं सामाजिक संरचना

राजीव शुक्ला

असि0 प्रोफे0, समाजषास्त्र विभाग हेमवंती नंदन बहुगुणा पी.जी. कालेज, अझारा, प्रतापगढ़ (उ0प्र0) भारत

Received- 20.04. 2019, Revised- 28.04.2019, Accepted - 05.05.2019 E-mail: rksharpur@gmail.com

सारांश : *भारतीय ग्रामीण समाज की एक विशिष्ट संरचना है जिसमें जाति, संयुक्त परिवार, धार्मिक मान्यताओं व कर्मकाण्डों का प्रभाव देखा जा सकता है। ग्रामीण भारत की एक विशिष्ट जीवन–शैली है, जिसमें प्राथमिक सम्बन्धों का प्रभाव होता है। किन्तु परिवर्तन की प्रक्रियाओं से यह समाज भी अछूता नहीं रहा है। कालान्तर में ग्रामीण विकास के अनेक प्रयासों के फलस्वरूप परम्परागत ग्रामीण सामाजिक संरचना में परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन उनके विचारों, मूल्यों तथा रहन–सहन के तरीकों में भी देखा जा सकता है।*

प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के द्वारा भारतीय ग्रामीण संरचना में होने वाले परिवर्तनों को उल्लेखित करने का प्रयास किया गया है। शोध पत्र में निम्नलिखित उद्देश्यों को शामिल किया गया है।

1. ग्रामीण सामाजिक संरचना के आधारभूत तत्त्वों को रेखांकित करना।

2. ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में ग्रामीण संरचना में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या करना।

कुंजी शब्द – धार्मिक मान्यता, कर्मकाण्ड, विशिष्ट जीवन शैली, प्राथमिक सम्बन्ध, परम्परागत, सामाजिक संरचना

व्यक्ति समाज की मूल इकाई है। वह कई प्रकार के व्यक्तिगत कार्य करता है जो सामाजिक संदर्भ में प्रतिबिम्बित होते हैं, जबकि कई कार्य तात्कालिक सामाजिक परिवेश में असंगत होते हुए भी दीर्घकालीन सामाजिक परिवर्तनों के परिचायक होते हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत कार्य एवं सामाजिक परिवेश अन्योयाश्रित होते हैं। समाज की व्यवस्था क्रमबद्ध एवं नियमबद्ध तरीके से चलती है इसके लिए समाज में कुछ नियम, रीति–रिवाज, कार्यविधियों, अधिकार स्वतन्त्रता व पारस्परिक सहायता अनेक समूहों तथा उनमें उपविभागों मानव नियंत्रणों और स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था होती है यही सामाजिक व्यवस्था है। समाज की अपनी एक संरचना होती है जिसमें कुछ निश्चित प्रकार्य होते हैं।

सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत समाज की संस्थायें, परम्परायें, रीति–रिवाज, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्य विचारधारायें, दृष्टिकोण, राजनीतिक एवं शिक्षण संस्थाएँ परिवार व कानून तथा व्यक्तिगत आचार–व्यवहार सम्मिलित है। किसी भी सामाजिक व्यवस्था या सामाजिक परिवेश में जो भीतरी स्थायी या अपेक्षाकृत स्थायी ढांचा विद्यमान होता है, उसे ही सामाजिक संरचना कहा जाता है। मैकाइवर तथा पेज (1949) भी सामाजिक संरचना को अमूर्त मानते हुए कहते हैं कि 'समूह निर्माण के विभिन्न तरीके संयुक्त रूप से सामाजिक संरचना के जटिल प्रतिमान का निर्माण करते हैं– सामाजिक संरचना के विश्लेषण में सामाजिक प्राणियों की विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियों तथा रूढ़ियों के कार्य प्रकट होते हैं।

पारसंस (1942) ने सामाजिक संरचना को अन्तःसम्बन्धित संस्थाओं, एजेन्सियों एवं सामाजिक प्रतिमानों, साथ ही समूहों में प्रत्येक सदस्य द्वारा प्राप्त प्रस्थितियों एवं भूमिकाओं की विशेष व्यवस्था माना है। सामाजिक संरचना एक अमूर्त धारणा है क्योंकि समाज की संरचना का निर्माण सामाजिक सम्बन्धें, संस्थाओं, प्रतिमानों, पदों एवं भूमिकाओं से होता है और ये सभी अमूर्त हैं।

रेडक्लिफ–ब्राउन (1940) के अनुसार ''सामाजिक संरचना संस्था द्वारा परिभाशित और नियमित सम्बन्धों में लगे हुए व्यक्तियों की एक क्रमबद्धता हैं इसमें ब्राउन तर्क देते हुए कहते हैं कि वास्तविक जीवन में हम देखते हें कि मनुष्य परस्पर सामाजिक सम्बन्धों द्वारा बंधे हुए हैं। इन सम्बन्धों द्वारा ही सामाजिक संरचना का निर्माण होता है।'' मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध स्वतन्त्र नहीं होते, वरन् संस्थाओं एवं नियमों द्वारा परिभाषित, नियमित एवं नियंत्रित होते हैं।

इसी प्रकार गिन्सवर्ग (1947) का भी मत है कि सामाजिक संरचना का निर्माण समूहों, समितियों एवं संस्थाओं से मिलकर होता है। उनके अनुसार सामाजिक संरचना का सम्बन्ध सामाजिक संगठन के प्रमुख रूप अर्थात् समूहों, संस्थाओं एवं समितियों के प्रकारों तथा इनके संस्थाओं जो समाजों का निर्माण करते हैं, से है। ग्रामीण सामाजिक संरचना का सम्बन्ध ग्रामीण समुदाय से है।

ग्रामीण सामाजिक संरचना– ग्रामीण समुदाय का एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है। जिसमें व्यक्ति निवास करते हैं। समुदाय में उनका सामान्य जीवन व्यतीत होता है। ग्रामीण समुदाय में सामुदायिक भावना पाई जाती है। ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत संस्थाओं और ऐसे व्यक्तियों

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

का संकलन होता है जो छोटे से केन्द्र के चारों ओर संगठित होते हैं तथा सामान्य प्राकृतिक हितों में भाग लेते हैं। ग्रामीण समाज में मानव के सभी हितों की पूर्ति होती है। ग्रामीण समाज अपेक्षाकृत स्थिर समाज होते हैं। उनमें सापेक्ष रूप संगतिशीलता का अभाव होता है।

धर्म– भारतीय समाज सदा से धर्म परायण रहा है। धर्म की यह परम्परा भारतीय समाज की अति प्राचीन परम्परा है और पूर्व वैदिक काल से ही इसकी निरंतरता अविच्छिन्न रूप से बनी हुई है। धर्म ही भारतीय सामाजिक जीवन का सर्वोच्च आदर्श माना गया है। धर्म किसी न किसी रूप में मनुष्य के साथ हमेशा से सम्बन्धित रहा है। भारतीय समाज में यह विश्वास किया जाता है कि मनुष्य के सभी क्रिया–कलापों का अन्तिम लक्ष्य धर्म संचय करना है। जीवन के प्रत्येक छोटे–बड़े कार्य यहाँ धर्म के आधार पर व्यस्थित होते हैं।

टायलर (1993) धर्म को आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास मानते हैं। धर्म किसी न किसी प्रकार की अतिमानवीय या अलौकिक या समाजोपगी शासक पर विश्वास है, जिसका आधार भय, श्रद्धा, शक्ति तथा पवित्रता की धारणा है और जिसकी अभिव्यक्ति प्रार्थना पूजा, आराधना है। स्पष्ट है कि धर्म एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है जो ग्रामीण संरचना का प्रमुख अंग है।

जाति– जाति भारतीय सामाजिक संरचना का प्रमुख आधार है। जिसने यहाँ के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन को प्रभावित किया है। यह एक शक्तिशाली कारक है जो मनुष्य की जीविका, व्यवसाय एवं प्रतिष्ठिा का निर्धारण करता है। जाति एक ऐसा वर्ग है जिसकी सदस्यता जन्म से ही निश्चित होती है अर्थात् कोई भी व्यक्ति अपनी योग्यता आदि बढ़ाकर अपनी जाति परिवर्तित नहीं कर सकता है। एक सांस्कृतिक घटना के रूप में जाति को मूल्यों, विश्वासों तथा प्रचलित व्यवहारों के रूप में देखा जा सकता है।

हट्टन (1946) ने जाति व्यवस्था की संरचना का वर्णन करते हुए जाति से जुड़े समूहों व व्यक्तियों के आपस में होने वाले व्यवहार पर लगे प्रतिबन्धों व नियंत्रण का विश्लेषण करते हए कहा कि जातियाँ सबसे अधिक अगर किसी कारण से अलग दिखाई देती हैं, तो वह परस्पर वैवाहिक प्रतिबन्ध है। आज चूँकि आर्थिक, राजनीतिक व व्यक्तिगत स्तर से कोई भी उच्च जाति के बराबर होने का दिखावा कर सकता है, लेकिन सामाजिक रूप से आरोपित परस्पर विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध हमेशा एक जाति को दूसरी जाति से दूरी बनाये रखने पर मजबूर करता रहता है।

परिवार–मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। संस्कृति के सभी स्तरों में चाहें उन्हें उच्च कहा जाय या निम्न किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन अनिवार्यतः पाया जाता है। यदि हम इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि परिवार आदि युग में अपने आप में पूर्ण सामाजिक इकाई थी जो धीरे–धीरे विशेष उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त छोटे आकार का एक सामाजिक संगठन बन गया। परिवार में जन्म लेने वाल उसेएक सम्पूर्ण समुदाय या जगत् समझते है किन्तु जैसे–जैसे वे बड़े होकर बल्कि होते जाते हैं उनमें परिवार का दायरा संकुचित होता जाता है। इसी कारण मैकाइवर एवं पेज (1950) समाज में परिवार को सबसे महत्त्वपूर्ण समूह मानते हैं।

इसी प्रकार श्यामाचरण दुबे (1977) के अनुसार– परिवार में स्त्री व पुरुष दोनों को सदस्यता प्राप्त होती है उनमें से कम से कम दो विपरीत यौन व्यक्तियों को यौन सम्बन्धों की सामाजिक स्वीकृत रहती है और उनके संसर्ग से उत्पन्न सन्तान मिलकर परिवार का निर्माण करते हैं। उपर्युक्त सामाजिक आयामों के अतिरिक्त ग्रामीणा भारतीय समाज में आर्थिक जीवन का भी विशेष महत्त्व है। किन्तु यह आर्थिक पक्ष उनके सामाजिक पहलुओं से घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहता है।

ग्रामीण विकास– विकास का शाब्दिक अर्थ किसी चीज के फैलाव से है। विकास निरन्तर शनैः शनैः होने वाला परिवर्तन है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में विकास का अर्थ सामाजिक विकास से है। सामाजिक विकास का तात्पर्य होता है समाज की संरचनाओं में ऐसा परिवर्तन जो उस समाज के सभी वर्गों के मानव समूहों के जीवन में परिलक्षित है। गुन्नार मिर्डल (1968) विकास की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि विकास का अर्थ, ''आधुनिकीकरण के आदर्शों को सामाजिक जीवन में उतारने से हे वे कहते हैं कि विकास सामाजिक व्यवस्था में उन अनेक अवांछनीय अवस्थाओं का सुधार करना है जिनके कारण अल्पविकास की स्थिति बनी हुई है।''

स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास से आशय ग्रामीण जन के जीवन स्तर में सुधार लाने (आर्थिक, सामाजिक, वैदिक) से है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो ग्रामीण व्यक्तियों विशेषकर गरीबों के सतत् उन्नयन की ओर प्रशस्त होती है। अतः ग्रामीण विकास का आशय ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन कर रही जनसंख्या के जीवन स्तर को ऊपर उठाने तथा उसके विकास की प्रक्रिया को आत्मपोषित बनाने से है। ग्रामीण विकास के अन्तर्गत केन्द्र एवं राज्य परिवर्तित कार्यक्रमों को

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

सम्मिलित किया जाता है जो ग्रामीण जीवन के पहलुओं से जुड़े होते हैं। जैसे कृषि एवं इसकी सहायक क्रियाएँ सिंचाई, यातायात, शिक्षा, चिकित्सा ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग, आवास, विपणन, सामाजिक कल्याण आदि। राबर्ट चैम्बर (1983) ने ग्रामीण विकास को एक विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों, निर्धन ग्रामीण महिलाओं तथा पुरुषों को योग्य बनाने की एक ब्यूह रचना कहा है। जिसमें वे स्वयं तथा अपने बच्चों के लिए वह प्राप्त कर सकें जिसकी उन्हें अधिक आवश्यकता हैं। इसके अन्तर्गत सहायता की एक प्रक्रिया सम्मिलित होती है। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले निर्धनों में अत्यन्त निर्धन वर्ग को जीवनयापन हेतु ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के संचालन का अधिक से अधिक साथ प्राप्त हो सके।

ग्रामीण विकास से सामाजिक संरचना में परिवर्तन– सामाजिक संरचना में आने वाले महत्त्वपूर्ण अस्थायी या अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन सशोधन, परिमार्जन या विचलन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। प्रत्येक समाज में ऐसी शक्तियाँ विद्यमान होती है जो नये स्वरूप को प्रकट करती है। ग्रामीण विकास के फलस्वरूप ग्रामीण समाज में अनेक प्रकार के परिवर्तन देखने को मिले हैं जिन्हें अनेक अध्ययनों में देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कुमार (2014) ने ग्रामीण विकास एवं सामाजिक संरचना के मध्य सम्बन्धों का विश्लेषण किया, जिसमें पाया कि लगभग दो तिहाई एकाकी परिवार हैं, बहुसंख्य लोग विवाह के परम्परागत स्वरूप को ही उचित मानते है। दो–तिहाई लोग मानते हैं कि ग्रामीण विकास योजनाओं से उनको प्रत्यक्ष लाभ मिला है। 73वें संशोधन में पंचायतीराज व्यवस्था से ग्रामीण शक्ति संरचना का स्वरूप परिवर्तित हुआ है तथा महिलाओं सहित सभी की भागीदारी बढ़ी है, वहीं ग्रामीण सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन हुआ है।

आधुनिक काल में ग्रामीण विकास की अनेक शक्तियों यथा शिक्षा, धर्म निरपेक्षीकरण, नगरीकरण, औद्योगीकरण, यातायात और संचार के साधनों ने ग्रामीण समुदाय को अनेक रूपों में प्रभावित किया है। विभिन्न अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि यातायात, नवीन संचार के साधनों और शिक्षा के प्रसार ने भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में अनेक प्रकार की परिवर्तन की प्रक्रियाओं को जन्म दिया हैं, ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में परम्परागत प्रतिमानों, रीति–रिवाजों, झाड–फूंक, टोटका–टोना आदि का प्रचलन कम हो रहा है। राजनैतिक सहभागिता यद्यपि बढ़ी है किन्तु उसमें भी वर्गीय–जातीय चरित्र आज भी देखा जा सकता है। परिवार का स्वरूप बदला है तथा प्रकार्यात्मक एकता आज भी यदा–कदा देखी जा सकती है। विवाह की प्रकृति में प्रेम विवाह का प्रचलन बढ़ रहा है। संचार व तकनीकी प्रसार ने मोबाइल घनत्त्व को तेजी से बढ़ाया है। जिससे अनेक प्रकार के नये सामाजिक सम्बन्धों, मूल्यों तथा नैतिकता का विकास हुआ है।

स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रयासों से परम्परागत ग्रामीण संरचना में परिवर्तन के बीज बो दिये हैं।

गाँवों में वर्गीय समाज का जन्म हुआ है परम्परागत सामाजिक सम्बन्ध शिथिल हुए हैं व्यवसाय के नये अवसरों ने जाति–व्यवसाय के परम्परागत बन्धनों को तोड़ा है। सूचना प्रौद्योगिकी और भूमण्डलीकरण के युग में तथा संचार के साधनों के प्रभाव से ग्रामीण समाज भी अछूता नहीं रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लवानिया, एम0एम0 एवं जैन, एस0के0, 2004, ग्रामीण समाजशास्त्र रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 29–30
2. पारसंस, टी0 1942 ''एज एण्ड सेक्स इन दि सोशल स्ट्रक्चर ऑफ द यूनाइटेड स्टेट्स'' अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू वा0–7, नं0 604
3. गिन्सवर्ग, मोरिस, 1947, रीजन एण्ड अनरीजन इन सोसायटी, लागमैंस, ग्रीन एण्ड कं0 लंदन, पृ0 2
4. रेडक्लिफ–ब्राउन, ए0आर0 1940, ''आन सोशल स्ट्रक्चर'' जर्नल ऑफ द रॉयल एन्थ्रोपोलॉजिक इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, वा0–70, नं0 1, पृ0 3
5. जॉनसन, एच0एम0, 1960, सोशियोलॉजी : इन सिस्मेटिक इन्ट्रोडक्शन, हरकोर्ट, ब्रास एण्ड वर्ल्ड न्यूयार्क, पृ0 57
6. आहूजा, राम, 2011, भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशंस जयपुर, पृ0 1
7. डेविस, के0 1949, ह्यूमन सोसायटी, दि मैकमिलन कं0, न्यूयार्क, पृ0 621
8. टायलर, ई0 वी0, 1993, प्रिमिटिव कल्चर, जॉनमेरी, लन्दन,
9. हट्टन, जे0 एच0, 1946, कास्ट इन इण्डिया, आक्सफोर्ड प्रेस, बम्बई, पृ0 191
10. जैन, शोभिता, 2004 भारत में परिवार, विवाह एवं नातेदारी, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 5
11. सिंह, जे0 पी0 1993, समाजशास्त्र : अवधारणा

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

एवं सिद्धान्त, प्रेन्टिस हाल, नई दिल्ली, पृ0 196

12. दुबे, श्यामाचरण, 1977, मानव और संस्कृति, एलाइड पब्लिकेशन बाम्बे, पृ0 10
13. श्रीनिवास, एम0 एन0 1962, इण्डियाज विलेजेज, एशिया पब्लिकेशंस, बाम्बे, पृ0 13
14. मिर्डल, गुन्नार, 1968, एशियन ड्रामा, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली
15. हैरिस, जे0 1982, रूरल डेवलपमेंट : थ्योरीज ऑफ पीसेंट इकोनामी एण्ड एग्रेरियन चेंज, हचिंसन यूनीवर्सिटी लाइब्रेरी लंदन, पृ0 1
16. मोरिस, जी0 सी0, 1952, ''स विलेज इन राजस्थान, इन स्टडी इन रेपिड सोशल चेंज'', इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, पृ0 4
17. मिलर, ई0 जे0 1952, ''विलेज स्ट्रक्चर इन नार्थ केरला'' दि इकोनॉमिक वीकली, 9 फरवरी
18. सिंह, ए0 एन0 2006, ''ग्रामीण समाज एवं परिवर्तन'', राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा, अंक–1 जनवरी–जून
19. कुमार, अमित, 2014, ग्रामीण पुनर्निर्माण में ग्राम सत्ता संस्थान की भूमिका, पी–एच0डी0 शोध– प्रबन्धन बीरबहादुर सिंह, पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर
20. जोशी, एस0 2015, म0प्र0 के ग्रामीण समुदायों में व्यावसायिक गतिशीलता एवं बदलाव लेता जातीय संस्तरण'', राधामकल मुखर्जी, चिन्तन परम्परा, वर्ष–17, अंक–1 जनवरी–जून, पृ0 34–38

*****